वीर संवत २४९२, आषाढ़ शुक्ल २, सोमवार, दिनाङ्क २०-०६-१९६६
गाथा ३२ से ३४ प्रवचन नं. १३

पुण्य-पाप संसार है – ऐसा बतलाते हैं। इसमें पहले ३१ (गाथा में) आया था न? व्यवहारचारित्र निरर्थक है, इतना कहा था। आत्मा के दर्शन-ज्ञान-चारित्र के बिना अकेला यह व्यवहार तप, यह सब अकृतार्थ है; वह कुछ कार्य (काम का) नहीं, निरर्थक है – ऐसा ३१ (गाथा में) कहा था। इसमें आगे है, उसके पहले ३० (गाथा में) भी निश्चय -व्यवहार साथ में कहा था। जहाँ निर्मल आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति हो, वहाँ व्रतादि निमित्तरूप होते हैं, साथ में होते हैं – ऐसा वहाँ ३० में सिद्ध किया है। २९ में ऐसा कहा था कि व्रतादि मोक्षमार्ग नहीं है – ऐसा कहा था। मोक्षमार्ग नहीं है। दया, दान, व्रत, भक्ति, तपादि के परिणाम, वह मोक्षमार्ग नहीं है – ऐसा कहा था। समझ में आया? २८ में क्या कहा था? २८ में **त्रिलोक पूज्य जिन आत्मा ही है।** यह आत्मा ही तीन लोक में आत्मा को आदरणीय और मोक्ष का कारण है। फिर यह कहा कि इसके अतिरिक्त सब व्रतादि निरर्थक है। निरर्थक अर्थात् मोक्षमार्ग नहीं है – इतना २९ में कहा था। ३० में दो साथ में थे – शुद्ध चैतन्य की दृष्टि, अनुभव और व्रतादि के परिणाम साथ में थे। (गाथा) ३१ में कहा कि यह व्यवहारचारित्र अकृतार्थ है। अकृतार्थ अर्थात् अकार्य है, उसमें कुछ कार्य नहीं। इतना कहकर अब यहाँ ३२ में उसका फल बतलाते हैं।

पुण्णिं पावइ सग्ग जिउ, पावएँ णरय-णिवासु।
बे छंडिवि अप्पा मुणइ, तो लब्भइ सिववासु॥३२॥

यह जीव, पुण्य से तो स्वर्ग पाता है। व्यवहार व्रतादि से स्वर्ग पाता है – ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? दया, दान, व्रतादि के परिणाम, शील, संयम – यह सब भाव, स्वर्ग का कारण है, अर्थात् संसार का कारण है – ऐसा कहा और **पावइ णरयणिवासु**

पाप से नरक में निवास होता है, नरक में जाता है – यह संसार है; दोनों संसार है। पाप से नरक में और पुण्य से स्वर्ग में (जाए) – दोनों संसार है, उनमें कहीं आत्मा नहीं आया; उनमें कहीं मोक्ष नहीं आया। समझ में आया? यह सब संसार दुःखरूप ही है। संसार, फिर सुखरूप कैसा? लोगों को व्यवहार से ऐसा लगता है कि यह पुण्य किया (तो) स्वर्ग मिला, यह सेठपना मिला, पैसा मिला। ये दोनों है तो संसार; दोनों भावों से मुक्ति नहीं है। ऐसी स्पष्ट बात कर दी है। क्रम-क्रम से लेते हुए (कह दिया है)। संसार मीठा है? है? संसार अर्थात् जहर। भगवान आत्मा और मुक्ति अर्थात् अमृत। इसके लिये यहाँ स्पष्टीकरण किया है।

छंडिवि अप्पा मुणइ देखो! शुभ-अशुभभाव छोड़कर, रुचि छोड़कर, आश्रय छोड़कर **अप्पा मुणइ** आत्मा का अनुभव करे। आत्मा आनन्द ज्ञानस्वरूप का अनुभव करे, उसके सन्मुख होकर, उसका आश्रय लेकर उसका अनुभव करो तो **लब्भइ सिववासु** लो! नरक वासु था, निवास। इसमें शिववास (कहा)। मोक्ष-पर्याय को पाता है, निर्मल अवस्था को पाता है। कहो, **लब्भइ सिववासु** शिवमहल में वास आता है – ऐसा कहा है। शिवरूपी महल (अर्थात्) आत्मा की मुक्तदशा, परमानन्दरूपी दशा। इन पुण्य-पाप को छोड़कर आत्मा का अनुभव करे तो मुक्ति पाता है। पुण्य के क्रियाकाण्ड से कहीं मुक्ति नहीं है, तथापि उसे बताया अवश्य कि निश्चय हो, वहाँ ऐसा व्यवहार होता है, साथ में बतलाने के लिये, परन्तु पहले व्यवहार होता है और फिर निश्चय होता है – ऐसा कुछ नहीं कहा है। समझ में आया? अकेला व्यवहार तो निरर्थक कहा है, अकृतार्थ कहा है। उसमें कुछ गलत करते हैं? संसार का कारण है। यहाँ सीधा (व्यवहार को) संसार बतलाया। अकेला व्यवहार – दया, दान, व्रतादि के परिणाम (वह संसार है)। (पहले) निमित्तरूप कहा था। निश्चय होवे तो। आत्मा का श्रद्धा स्वभाव आदि निर्मल पर्यायें प्रगट हुई तो उस व्यवहार को निमित्तरूप कहते हैं परन्तु अकेला व्यवहार तो संसार का ही कारण है। वह है तो अकेला बन्ध का कारण; निश्चय के साथ रहा हुआ व्यवहार, परन्तु उसे निमित्तरूप कहकर, आगे शुद्धि की वृद्धि हुई, छठवीं भूमिका में थी, इससे कहा कि यह दो होवे तो मुक्ति को पाता है – ऐसा कहा था। दो से होती है – ऐसा कहा जाता है न?

होती तो एक से है, परन्तु इससे होती है – ऐसा कहा जाता है। कहो, इसमें समझ में आया ? इसमें बड़ा विवाद ! लो ! वे कहते हैं, नहीं; चौथे से सातवें तक तो व्यवहाररत्नत्रय ही होता है। यहाँ कहते हैं – व्यवहाररत्नत्रय बन्ध का कारण है; अकेला होवे तो उसे निरर्थक कहा जाता है; निमित्त भी नहीं, निमित्त भी नहीं। निमित्त तो, यहाँ उपादान आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति स्व-आश्रय चैतन्य का अनुभव होवे तो वैसे भाव को निमित्तरूप कहा जाता है। नैमित्तिक होवे तो निमित्त कहलाये न ? वस्तु न होवे तो निमित्त किसे कहना ?

यहाँ निमित्त का फल कहा। अकेला निमित्त हो – दया, दान, व्रतादि; पूजा, भक्ति के परिणाम (होवें) तो स्वर्ग में जाए और यह पाप के परिणाम – हिंसा, झूठ, चोरी (होवे तो) नरक में जाए; इन दोनों को छोड़े तो शिवमहल में जाए। कहो, समझ में आया ? दोनों कर्म, संसार और भ्रमण का कारण है। लो ! इस बात में ठीक लिखते हैं। पुण्य कर्म.... है न ? अपने पुण्य अधिकार में आता है न ? **साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और उच्च गोत्र है, उनका बन्ध प्राणीमात्र के प्रति दयाभाव.....** दयाभाव से करता है। सातावेदनीय का बन्ध, शुभ आयु, शुभ नाम, उच्च गोत्र – यह अपने पुण्य अधिकार में आता है। यह दयाभाव-आहार, औषध, अभय और विद्यादान – यह चार प्रकार का दान दे तो सातावेदनीय आदि बाँधता है। सातावेदनीय, शुभ आयु यह.... ।

श्रावक और मुनि का व्यवहारचारित्र.... यह श्रावक और मुनि का व्यवहारचारित्र भी पुण्य बन्ध का कारण है। इस बात में ठीक-ठीक स्पष्टीकरण किया है। निमित्त आवे, वहाँ फिर ज़रा गड़बड़ करते हैं। निमित्त मिलाना – ऐसा आता है। समझ में आया ? देखो ! यहाँ तो कहते हैं कि **क्षमाभाव, सन्तोष, सन्तोषपूर्वक का आरम्भ, अल्प ममत्व, कोमलता, समभाव से कष्ट सहन, मन-वचन-काया का सरल कपटरहित वर्तन, पर गुण प्रशंसा, आत्मदोषों की निन्दा, निराभिमानता आदि शुभभावों से होता है।** इन सब शुभभावों से होता है और शुभभाव, स्वर्ग का कारण है। देखो ! इसमें तो क्षमा को रखा। क्षमा करता हूँ – ऐसा विकल्प है न ? सब शुभभाव लिया है। समझ में आया ? सन्तोष, सन्तोषपूर्वक आरम्भ अथवा अल्प आरम्भ, मन्दराग – यह सब शुभभाव हैं। इनसे सातावेदनीय आदि बँधते हैं। ऊपर शुभ आयु कहा न ?

असातावेदनीय, वह अशुभभाव से बँधता है। असातावेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम, नीच गोत्र, ज्ञानावरणीय (आदि) चार कर्म – यह पापकर्म (हैं)। **उनका बन्ध ज्ञान के साधन में विघ्न करने से....** ज्ञान में विघ्न करने से, **दुःखित और शोकाकुल होने से....** शोक करने से **रूदन करने से, दूसरों को कष्ट पहुँचाने से, पर का घात करने से सच्चे देव-गुरु-धर्म की निन्दा करने से, तीव्र कषाय करने से, अन्यायपूर्वक आरम्भ करने से, अत्यधिक मूर्च्छा (ममत्व) रखने से, कपटपूर्वक आचरण करने से....** कपट से आचरण और वर्तन करने से.... कहो, समझ में आया? **मन-वचन-काया को वक्र रखने से, झगड़ा करने से....** यह सब बात रखी है। शास्त्र में होती है न? **परनिन्दा और आत्मप्रशंसा से, अभिमान करने से, दानादिक में विघ्न डालने से, दूसरे का बुरा चिन्तवन करने से, कठोर और असत्य वचन से और पाँच पापों में प्रवर्तन करने से होता है।** लो! इनसे क्या होता है? असातावेदनीय बँधती है; अशुभ आयु बँधती है, अशुभ नाम बँधता है, और नीच गोत्र बँधता है। बँधता है; अबन्ध नहीं होता। समझ में आया?

व्रत, तप, शील, संयम के पालन में शुभराग होता है.... लो! है न? मोक्ष का कारण एक शुद्धोपयोग है; दूसरा कोई कारण नहीं है। एक सीढ़ी डाली है परन्तु कोई मेल नहीं है। इस और सीढ़ी डाली है। व्यवहार को सीढ़ी (रूप) रखा है। **जैसे कमरे पर पहुँचने के बाद सीढ़ियों को कौन याद करता है? सीढ़ियाँ तो ऊपर आने के लिये निमित्त थे।** वह यहाँ सीढ़ी-फीढ़ी है ही नहीं, वह तो एक है अवश्य – इतनी बात है। यहाँ निमित्त आ गया, वहाँ गड़बड़ की है। सीढ़ी-फीढ़ी है नहीं; वह तो एक है – इतनी बात। उसे छोड़कर, और वह भी यहाँ निश्चय होता है, तब ऐसा व्यवहार होता है और वह भी उसके बिना का होता है। समझ में आया? व्यवहार बिना का निश्चय होता है। आत्मा के आश्रय से श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति (प्रगट हुए, वे) व्यवहार बिना के होते हैं। व्यवहार है, इसलिए यहाँ (निश्चय में) आते हैं – ऐसा नहीं है, सीढ़ी-फीढ़ी नहीं है। समझ में आया? समयसार का थोड़ा आधार दिया है। शुभकर्म को शुशील कैसे कहें? ऐसा। यह पाठ की बात है। दोनों जीव को बाँधते हैं – अशुभ और शुभ दोनों बाँधते हैं। यह तो समयसार की गाथा दी है।

☆ ★ ☆

निश्चय चारित्र ही मोक्ष का कारण है

वउ तउ संजमु सीलु जिय, इय सव्वइँ ववहारु।
मोक्खहँ कारणु एक्कु मुणि, जो तइलोयहँ सारु ॥३३॥

व्रत-तप-संयम-शील सब, ये केवल व्यवहार।
जीव एक शिव हेतु है, तीन लोक का सार॥ ३३॥

अन्वयार्थ – (जिय) हे जीव! **(वउतउसंजमुसील इव सव्वइ ववहारू)** व्रत, तप, संयम, शील ये सब व्यवहार चारित्र है **(मोक्खह कारण एक्कु मुनि)** मोक्ष का कारण एक निश्चय चारित्र को जानो **(जो तइलोयहँ सारु)** जो तीन लोक में सार वस्तु है।

☆ ★ ☆

३३। **निश्चय चारित्र ही मोक्ष का कारण है।** लो! आत्मा के आश्रय से वीतरागता प्रगट हो, वह एक ही मोक्ष का कारण है। व्यवहारचारित्र बन्ध का कारण है। अभी यह बड़ा विवाद, झगड़ा (चलता है)। दूसरे कहते हैं, वह व्यवहारचारित्र पहला मोक्ष का मार्ग है। पञ्च महाव्रत.... कुन्दकुन्दाचार्य ने किसलिए पालन किये थे? ऐसा कहते हैं। पालन कहाँ किये थे? थे, निमित्तरूप थे, उन्हें बन्ध का कारण जानकर उन्हें हेय जानते थे। वास्तव में तो आत्मा **'वउतउ संजमुसील जिय इय सव्वइ ववहारु'** लो! यह सब व्यवहार है। **'सव्वइ ववहारु मोक्खह कारण एक्क मुणि जो तइलोयहु सारु'** देखो, यह व्यवहार, मोक्ष का कारण नहीं है – ऐसा सिद्ध करते हैं। इसमें है न? शब्द है?

हे जीव! व्रत.... पञ्च महाव्रत, बारह व्रत.... **तप....** प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्त्य, सज्झाय इत्यादि। सज्झाय आदि सब, हाँ! **संयम....** छह काय जीव को नहीं मारना आदि। **शील....** कषाय मन्द अथवा शरीर का ब्रह्मचर्य, **यह सब व्यवहारचारित्र है।** ऐसा कहकर इसे मोक्ष का कारण नहीं कहा। एक व्यवहार है, ऐसा कहा। यह व्यवहारचारित्र है – ऐसा कहा।

'मोक्खह कारण एक्क' लो! **मोक्ष का कारण एक निश्चयचारित्र को जानो।** व्यवहार को मोक्ष का कारण नहीं कहा। क्या पढ़ते होंगे? इसमें बड़ा झगड़ा (चलता है)। सोनगढ़ एकान्त करता है, सोनगढ़ एकान्त करता है। व्यवहार से कुछ लाभ नहीं होता – ऐसा मानता है, ऐसा वे कहते हैं। यह आचार्य क्या कहते हैं? **'वउतउ संजमुसील जिय इय सव्वइ ववहारु'** ऐसा कहा कि यह व्यवहार है। है, ऐसा कहा परन्तु मोक्ष का कारण तो निश्चय आत्मा का आश्रय करना ही है। समझ में आया? तीन लोक में सार वस्तु होवे तो मोक्ष का कारण एक निश्चयचारित्र जानो। भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन, उसका सम्यग्ज्ञान तो है ही; यहाँ तो उत्कृष्ट बात लेनी है न? उन सहित स्वरूप में आश्रय करके स्थिरता, वीतरागता, निर्विकल्प शान्ति की उग्रता (प्रगट होवे), वह निश्चयचारित्र है। वह तीन लोक में सार है। सार ही वीतरागता है, सार चारित्र है। कहो, समझ में आया?

मोक्ष का कारण तो यह एक निश्चय आत्मा का चारित्र है। व्यवहारचारित्र है – ऐसा सिद्ध किया परन्तु मोक्ष का कारण नहीं। एक कहा – **'मोक्खह कारण एक्क'** दो नहीं। यह टोडरमलजी भी ऐसा कहते हैं, मोक्ष कारण दो नहीं हैं। दो का कथन है। दो माने कि मोक्षमार्ग दो है और दोनों को उपादेय माने तो भ्रम है, भ्रमणा है – ऐसा कहा है। तब वे कहते हैं – दोनों को समान न माने, उन्हें भ्रमणा है। लो, इसमें कहाँ मुठभेड़ हुई? टोडरमल के साथ विरोध और जो बात काललब्धि की उन्हें ठीक लगे, वह फिर टोडरमल में से लेते हैं। देखो! काललब्धि कोई वस्तु नहीं है (ऐसा कहा है)। अरे...! किस अपेक्षा से कहना चाहते हैं? काललब्धि तो ठीक, जिस समय में जिस पर्याय काल का है, वह तो तब ही है। समझ में आया? परन्तु वह कहीं नयी चीज नहीं है। यह तो स्वभाव का पुरुषार्थ किया, उस समय काललब्धि पकी है, यह काल पका – ऐसा जाना है, बस! यह बात ली और वह बात छोड़ दी।

टोडरमलजी कहते हैं – व्यवहार और निश्चय दो मार्ग हैं? कथन है, दो मार्ग नहीं। इसी तरह दोनों उपादेय नहीं... दोनों आदरणीय नहीं; आदरणीय तो एक ही हैं, वास्तव में मार्ग तो एक ही है। वही यहाँ कहते हैं, देखो! इस शास्त्र में क्या आधार है? योगीन्द्रदेव

का '**मोक्खह कारण एक्क**' आत्मा की पवित्र वीतरागदशा और केवलज्ञान पाने को एक ही कारण – आत्मा के आश्रय से ही चारित्र प्रगट होता है। व्यवहार, व्रत, नियम के, विनय, भक्ति आदि के भाव तो पराश्रितभाव हैं। पराश्रितभाव व्यवहार है – ऐसा कहा, सिद्ध किया, होता है। पूर्ण वीतराग न हो (वहाँ) ऐसा व्यवहार होता है परन्तु वह व्यवहार (हेय है)। दूसरी भाषा में कहा है कि तीन लोक में सार यह है, वह व्यवहार सार नहीं है – ऐसा कहा है। हैं ?

मुमुक्षु – अनादि काल से व्यवहार में खड़ा है।

उत्तर – खड़ा है, खड़ा रखेंगे नहीं, है उसे बतलाया। पडखे खड़ा रखा – ऐसा कहते हैं। दो, तीन बोल से तो चला आता है। २८ (गाथार्थ) चला नहीं आया ? कहा न ? यह क्रम लिया न ? ३० में एकसाथ कहा, ३१ में निरर्थक कहा, ३२ में फल कहा, उसमें निरर्थक कहा था, इसमें फल कहा; है उसका फल संसार है। समझ में आया ? देखो, क्रमशः सब लिया है। ठीक लिया है। २८ में ऐसा लिया, त्रिलोक पूज्य आत्मा लिया था, तत्पश्चात् २९ में वहाँ से ऐसा लिया कि यह व्यवहार, मोक्षमार्ग नहीं; मिथ्यादृष्टि के व्रतादि मोक्षमार्ग नहीं – ऐसा कहा था। नहीं, इतने से रोका नहीं क्योंकि जहाँ तक आत्मा का अनुभव न करे, तब तक यह सब मोक्षमार्ग नहीं है। ऐसा कहकर ३० में ऐसा कहा कि दोनों साथ होते हैं, बात सिद्ध की। आत्मा स्वयं का स्वरूप श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति से साधता है, तब ऐसा संयोग व्यवहार साथ में होता है – ऐसा कहकर ज्ञान कराया। पश्चात् यहाँ उड़ा दिया, अकेला व्यवहार (निरर्थक है)। यह निश्चय होवे तो उसे निमित्तपना लागू पड़ता है, नहीं तो अकेला व्यवहार अकृतार्थ है, कुछ कार्य नहीं करता.... आत्मा का कुछ कार्य नहीं करता, ऐसा। तब करता क्या है ? कि संसार। ३२ में स्पष्टीकरण किया है।

मुमुक्षु – होता है – ऐसे खड़ा रखा है।

उत्तर – खड़ा रखा है (अर्थात्) ज्ञान कराया है, ऐसा। खड़ा रखा अर्थात् ? है ऐसा ज्ञान कराया, खड़ा रखा अर्थात् है, ऐसा। (उसकी) कीमत नहीं। वह है, उसका ज्ञान कराया है। व्यवहार से अनुकूलता, व्यवहार से अनुकूलता, हाँ! निश्चय से प्रतिकूल है।

व्यवहार से अनुकूल (ऐसे) कषाय की मन्दता, शुभराग के ऐसे भाव होते हैं, बराबर सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की विनय भी व्यवहार है। वह विनय नहीं होता? निश्चय होवे वहाँ ऐसा विनय, सज्झाय, शास्त्र का स्वाध्याय – ऐसा भाव होता है परन्तु उनका फल पुण्य-बन्ध है, स्वर्ग फल है। समकिती को उसका फल स्वर्ग है – ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु – मोक्ष का कारण नहीं है।

उत्तर – नहीं। कहा न? '**मोक्खह कारण एक्क**' यह सार है, तीन लोक में सार है। (व्यवहार) तीन लोक में सार है ही नहीं। आहा...हा...!

यह तो योगसार है। योगसार अर्थात् स्वरूप की एकाग्रता के जुड़ान का सार, मोक्षमार्ग का सार। मोक्षमार्ग यह एक ही है – ऐसा कहा है। यह योगसार.... समझ में आया? योगसार अर्थात् आत्मा शुद्ध परमानन्द की मूर्ति की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता – यह एक ही योगसार है। योगसार एक ही मोक्ष का मार्ग है, इस योगसार में यह कहा गया है, समझ में आया? ठीक, थोड़ा-थोड़ा अर्थ इन्होंने किया है।

तीन लोक में सार वस्तु मोक्ष है, जहाँ आत्मा अपना स्वभाव पूर्णरूप से प्रगट कर लेता है, कर्मबन्ध से मुक्त हो जाता है, परमानन्द का नित्य भोग करता है। क्या मोक्ष का उपाय ही तीन लोक में सार है? ऐसा। मोक्षसार कहा न? तो उसका उपाय भी तीन लोक में सार है। उपाय कौन? कि चारित्र। चारित्र अर्थात् दर्शन-ज्ञानसहित स्वरूप में रमणता वह। दूसरे कहते हैं, चारित्र अर्थात् यह व्रतादि चारित्र.... वह नहीं, समझ में आया? **वह उपाय भी अपने ही शुद्धात्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान और उसमें ही आचरण है। निश्चयरत्नत्रयरूप स्वसमय, स्वरूपसंवेदन अथवा आत्मानुभव है।** तीन की एक व्याख्या.... आत्मा के स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, इसे निश्चय रत्नत्रय कहो, स्व-स्वरूप संवेदन कहो या आत्मा का अनुभव कहो।

यह एक ही ऐसा नियमरूप उपाय है। देखो! एक में से निकाला है। **यही एक ऐसा नियमरूप उपाय है, जैसा कार्य या साध्य होता है, वैसा ही उसका कारण अथवा साधन होता है।** कार्य निर्मल तो उसका साधन भी निर्मल, अन्य व्रतादि हैं वे तो मलिनभाव हैं। समझ में आया? साधन मलिन और साध्य निर्मल यह कोई यथार्थ उपाय

नहीं है। समझ में आया? **एक ऐसा नियमरूप उपाय.....** परम पवित्र मोक्षदशा, उसका कारण भी पवित्रता के परिणाम निश्चय स्वसंवेदन, निश्चयरत्नत्रय – यह एक ही उपाय है; दूसरा कोई उपाय नहीं है। समझ में आया?

व्यवहारचारित्र किया जाता है, वह मात्र व्यवहार है, निमित्त है। जो कोई व्यवहारचारित्र ही पाले तो भ्रम है, वह निर्वाण का साधन नहीं करता। अकेले पञ्च महाव्रतादि पाले, अट्ठाईस मूलगुण पाले, बारह व्रत पाले तो उनसे मुक्ति नहीं होती। (मुक्ति माने तो) भ्रम है, टोडरमलजी ने ऐसा लिखा, निर्वाण का साधन है नहीं, लो! **मन-वचन-काया की क्रिया को मोक्ष का उपाय मत जान।** अभी थोड़ी चर्चा आयी है, ऐ...ई...! देवानुप्रिया.... इस मन-वचन-काया की क्रिया से मोक्ष नहीं है – ऐसा यहाँ सोनगढ़वालों ने लिखा है न? उन इक्कीस उत्तर में। तो कहते नहीं; झूठ बात है। मन -वचन-काया की क्रिया मोक्षमार्ग है। क्रिया अभी, हाँ! वे परिणाम और योग नहीं, आहा...हा...! मन-वचन-काया योग; उनकी क्रिया वह योग कहा है परन्तु योग अर्थात् कम्पन होता है वह। अन्दर कम्पन होता है, वह योग है, वह बाहर की क्रिया को निमित्त है। मन-वचन और काया के पुद्गल तो जड़ हैं, उनमें प्रदेश कँपते हैं वह योग है और वह योग बन्ध का कारण है। वह योग बन्ध का कारण है, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। देखो, यहाँ स्पष्ट लिया, देखा? इन शीतलप्रसादजी को उड़ाते हैं, इन्होंने भी पढ़ा नहीं था? स्वयं को पूरा उड़ाया इसका इसे भान नहीं होता। आहा...हा...!

व्यवहारचारित्र को व्यवहारमात्र समझ। है न? **निश्चयचारित्र के बिना उससे मोक्षमार्ग में कुछ लाभ नहीं है। मुनि का या श्रावक का व्यवहार संयम यथार्थ रीति से शास्त्रानुसार पालन करके भी ऐसा अहंकार मत कर कि मैं मुनि हूँ....** व्यवहार से पाँच महाव्रत पालन करके कहे मैं मुनि हूँ। व्यवहार से पालते हैं, मैं मुनि हूँ, मैं क्षुल्लक हूँ, यह व्यवहार का अभिमान है – ऐसा कहते हैं। पञ्च महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पाले, बारह व्रत पाले तो कहता है हम श्रावक हैं, हम मुनि हैं, हम ब्रह्मचारी हैं, धर्मात्मा गृहस्थ हैं।

ऐसा करने से उसके वेश और व्यवहार में ही मुनिपना अथवा गृहस्थपना

मान लिया, वह ठीक नहीं है। व्यवहार का पालना वह तो अभिमान है, मिथ्यात्व है, राग है – ऐसा कहते हैं। राग पाले और ऐसा कहना कि हम मुनि हैं.... राग वह मुनिपना है? व्यवहार के व्रतादि मुनिपना है? बन्ध का कारण है। क्या कहना? इस धूल का कारण है। यह निश्चय वस्तु नहीं तो अकेला व्यवहार बन्ध का कारण है – ऐसा मानना चाहिए। बारह व्रत पाले, पञ्च महाव्रत पाले.... समझे न? आगम प्रमाण शुभक्रिया आदि करे और माने कि हम साधु हैं, श्रावक हैं तो मूढ़ है, कहते हैं। व्यवहार की क्रिया में मुनिपना -श्रावकपना कहाँ से आया? समझ में आया? वह तो पुण्य-बन्ध का कारण है।

शुद्धात्मानुभव ही मुनिपना है, वही श्रावकपना है, वही जिनधर्म है – ऐसा समझकर ज्ञानियों को शरीराश्रित क्रिया में अहंकार नहीं करना चाहिए। कितना ही अर्थ तो ठीक किया है।

मुमुक्षु – चौथे गुणस्थान में अनुभव होता है?

उत्तर – हाँ, होता है न; श्रावक को अनुभव होता है – यह तो पहले ही लिखते हैं।

आत्मा के सम्यग्दर्शन में स्वरूपाचरणरूप अनुभव, एक ही मोक्ष का मार्ग चौथे से शुरु होता है। जितने व्यवहार के विकल्प यह सब होते हैं, यह तो बात की, वे होते हैं। पूर्ण नहीं तो होते हैं परन्तु उनमें अहंकार करना कि यह मेरे, अभिमान किया कि हम करते हैं, विकार को हम करते हैं – ऐसा मानना तो निर्विकारी चीज तो पूरी रह गयी। समझ में आया? अहंकार नहीं करना। भावपाहुड़ का उद्धरण दिया है। हैं?

मुमुक्षु – निश्चय की अंगुली पकड़कर चलते हैं।

उत्तर – बिल्कुल अंगुली पकड़कर नहीं चलता, निश्चय है तो व्यवहार है – ऐसा नहीं और व्यवहार है तो निश्चय है – ऐसा नहीं; दोनों स्वतन्त्र हैं। व्यवहार है तो निश्चय है – ऐसा नहीं। स्वाश्रयपना भिन्न है, पराश्रयपना भिन्न है; दोनों चीज स्वतन्त्र है। अंगुली पकड़कर लावे न? अलग-अलग हैं। उनमें अंगुली कौन पकड़े?

वास्तव में तो आत्मा शुद्ध चैतन्य की दृष्टि ज्ञान हुआ, इसलिए सम्यग्दृष्टि इस व्यवहार से मुक्त है। व्यवहार है अवश्य; जैसे परद्रव्य हैं, ऐसे वह है परन्तु उससे मुक्त है।

वह मुझमें नहीं है। आहा...हा... ! अपने में नहीं है, उसे करके मानना कि यह हम मुनि और श्रावक हैं, (यह) मिथ्यादृष्टि है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया या नहीं ? जो अपने स्वरूप में नहीं; स्वरूप तो शुद्ध चैतन्य है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान शान्ति भी निर्मल है। उसमें व्यवहार व्रतादि का जो रत्नत्रय किया, वह उसमें तो नहीं है। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि की दृष्टि तो आत्मा पर है। राग/व्यवहार पर है ? यह तो व्यवहार पर दृष्टि है, व्यवहार आचरण वह हमारी क्रिया, हम साधु, हमें साधु मानो.... हम मनवाते हैं। अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं, वह पाले तो.... अभी तो अट्ठाईस मूलगुण भी नहीं है। यह तो अट्ठाईस मूलगुण पालता हो – पंच महाव्रत हो, बारह व्रत हो तो कहे हम मुनि हैं, वह मूढ़ है। व्यवहार में मुनिपना कहाँ से आया ? समझ में आया ? वह तो राग की क्रिया है। राग की क्रिया में मुनिपना श्रावकपना-समकितपना, मोक्ष का मार्ग कहाँ से आया ?

'जीवविमुक्को सबओ दंसणमुक्को य होइ चलसवओ' दृष्टान्त दिया, उस ओर अन्तिम गाथा है। **जीवरहित (शरीर) मुर्दा है।** भावपाहुड़ का मोक्ष अधिकार है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं, जीवरहित तो सब मुर्दे हैं। शरीर.... इसी प्रकार सम्यग्दर्शन (अर्थात्) आत्मा के भान बिना जीव का जीवन ही नहीं है, वह मुर्दा है। आत्मा शुद्ध अखण्डानन्द की प्रतीति, अनुभव के बिना यह तेरे शुभ आचरण की क्रियाएँ सब मुर्दा हैं। इसमें जीवन नहीं है – ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ?

जीवविमुक्को सबओ दंसणमुक्को य होइ चलसवओ।
सवओ लोयअपुज्जो लोउत्तरयम्मि चलसवओ॥ १४३॥

क्या कहा ? जैसे जो जीवरहित शरीर अपूज्य है, मुर्दा है; वैसे ही भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति के सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना यह व्यवहार व्रतादि सब मुर्दे हैं और वे पूज्य नहीं हैं। जैसे जीवरहित मुर्दा पूज्य नहीं है, वैसे सम्यग्दर्शनरहित अकेले व्रतादि, तपादि क्रियाकाण्ड, वे सब मुर्दे हैं; वे लोक में अपूज्य हैं। आहा...हा... ! अद्भुत कहा, भाई !

मुर्दा लोक में माननीय नहीं गिना जाता.... क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा का जीवन – कारणप्रभु, कारणजीव का आश्रय लिये बिना, उसकी दृष्टि-ज्ञान-चारित्र किये बिना अकेले व्रत, पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण आदि आगमानुसार पालन करे तो भी वह सब माननीय नहीं है। आहा...हा... ! हैं ?

मुमुक्षु – इसका अर्थ तो स्पष्ट है ही न!

उत्तर – यह स्पष्टता से माने तब न? तुम्हारे पास पुस्तक नहीं है? यह शास्त्र का आधार है, यह भावपाहुड़ की १४३ वीं गाथा है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव का भावपाहुड़ है, देखो! गाथा दी है न? इसमें तो न्याय, भाव क्या रखा? भाई! कि जहाँ आत्मस्वभाव शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र शुद्धता नहीं, वहाँ अकेले व्रत-नियम आदि सब मृतक-अमान्य, अपूज्य है, मुर्दा है। समझ में आया? यह गाथा है। भावपाहुड़ - १४३।

आगे सम्यग्दर्शन का निरूपण करते हैं। पहले कहते हैं कि सम्यग्दर्शनरहित प्राणी चलता हुआ मृतक है। चलता मुर्दा है, चैतन्यप्राण, भावप्राण, आनन्दप्राण जिसके – आत्मा के हैं – ऐसे प्राण की प्रतीति-ज्ञान और रमणता प्रगट की है, वह जीवित जीव है। आहा...हा...! समझ में आया? इसीलिए सैंतालीस शक्ति में पहली जीवत्वशक्ति ली है न? जीवत्वशक्ति भगवान आत्मा में है। चैतन्य, दर्शन, ज्ञान, सुख, सत्ता प्राण – ऐसे प्राण का स्वीकार होकर शुद्ध चैतन्य श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति प्रगट हुए हैं, उसे यहाँ जीवित जीव कहा जाता है। इसके बिना अकेले पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण का पालन, बारह व्रत का विकल्प, शरीर का ब्रह्मचर्य पालन – ऐसे सब शुभभाव को तो (जैसे) जीवरहित शरीर, वैसे ही चैतन्य शुद्ध निश्चय रहित वह मुर्दा है। आहा...हा...! समझ में आया?

'जीवविमुक्को सबओ' लोक में जीवरहित शरीर को शव कहते हैं, मृतक या मुर्दा कहते हैं। वैसे ही सम्यग्दर्शनरहित पुरुष चलता मुर्दा है। चलता मुर्दा.... दूसरा मुर्दा तो (अर्थी पर) उठाकर चले – ऐसे। अर्थी, अर्थी कहते हैं न? यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि **मृतक तो लोक में अपूज्य है, अग्नि से जलाया जाता है....** आहा...हा...! **पृथ्वी में गाढ़ दिया जाता है और दर्शनरहित चलता हुआ मुर्दा लोकोत्तर जो मुनि-सम्यग्दृष्टि उनमें अपूज्य है, वे उनको वन्दनादि नहीं करते हैं।** अकेले व्यवहार-व्रतादि के पालनेवाले तो धर्मात्मा वन्दन करने योग्य नहीं मानते हैं – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? क्या कहा यह?

मुनि वेष धारण करता है तो भी उसे संघ के बाहर रखते हैं.... जिसे सम्यग्दर्शन का भान नहीं, आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति का भान नहीं – ऐसे सम्यग्दर्शन के जीवनरहित के

अकेले पाँच महाव्रत और बारह व्रतादि या उसके योग्य जो क्षुल्लकपने का भाव लो न, वह पालता हो तो वह सब मुर्दा है। जैनशासन के स्तम्भ में नहीं मिलते, जैनशासन के स्तम्भ में नहीं मिलते। वहाँ तो जीवताजीव मिलते हैं। आहा...हा...! ऐसे मुर्दे उसमें हाथ नहीं आते, साथ नहीं मिलते। समझ में आया? दो गाथायें रखी हैं, हाँ!

जह तारयाण चंदो मयराओ मयउलाण सव्वाणं।
अहिओ तह सम्मत्तो रिसिसावयदुविहधम्माणं॥ १४४॥

देखो! श्रावक और मुनि में मुख्य धर्म तो सम्यग्दर्शन है। आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति अखण्डानन्दकन्द का अन्तर अनुभव का सम्यग्दर्शन, वह श्रावक और मुनि के धर्म में मुख्य तो वह है। समझ में आया? **मुनि और श्रावक दोनों के धर्म में सम्यग्दर्शन शोभता है।** लो! समझ में आया?

आत्मा परम पवित्र प्रभु, शुद्धभाव से भरपूर पदार्थ, शुद्धभाव से भरा भगवान उसकी शुद्धस्वभाव की दृष्टि का अनुभव, उसकी दृष्टि, उसका – आत्मा का ज्ञान और उसमें रमणता अथवा दर्शन और ज्ञान – दोनों की यहाँ मुख्यता ली है। ऐसे शुद्ध आत्मस्वरूप की श्रद्धा और ज्ञान के बिना जीव अकेले पंच महाव्रत पालते हों, बारह व्रत पालते हों, ब्रह्मचर्य पालते हों, दया पालते हों, करोड़ों का दान करते हों, वे सब भाव मुर्दे हैं। आहा...हा...! समझ में आया? वह सब राग–भाग है, मर गया मुर्दा है। रतनलालजी! अद्भुत बात भाई! आहा...हा...!

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर ने पूर्णानन्द अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु देखा है। उसमें यह पुण्य-पाप के विकाररहित आत्मा हैं। शरीर की क्रियारहित आत्मा है, ऐसे आत्मा को, पूर्ण शुद्धस्वरूप के भाव को अन्तर दर्शन और ज्ञान द्वारा जो अनुभव और प्रतीति करे, उसे यहाँ श्रावक और मुनि कहा जाता है। इस सम्यग्दर्शन के बिना, आत्मा शुद्धभाव के भान बिना, शुद्ध श्रद्धा के ज्ञान बिना अकेले पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, बारह व्रत, दया, दान, भक्ति आदि का क्रियाकाण्ड, पूजा, श्रावक के छह आते हैं न? छह कर्तव्य, वे सब निरर्थक, निरर्थक मुर्दा हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

वीतराग परमेश्वर के मार्ग में आत्मा वीतरागस्वरूप परमानन्दमूर्ति की वीतरागीदृष्टि, अन्दर निर्विकल्प वीतरागी ज्ञान, उसके जीवन को जीवन कहा जाता है। उस जीव को जीवित जीव कहा जाता है। आहा...हा...! समझ में आया? यह पैसेवाले भी मुर्दा होंगे? यह वकील-वकील भी?

मुमुक्षु – इनके बाप-दादा भी।

उत्तर – इनके बाप-दादा नहीं। बाप-दादा में कहाँ तुम्हारे जैसी चतुराई थी? माणिकचन्दभाई की.... ऐ....ई....! बाप-दादा नहीं। इस वकालात की पढ़ाई, यह सब मुर्दा है – ऐसा कहते हैं। माणिकचन्दभाई में कहाँ वकालात थी? ऐ... हरिभाई! तुम्हारे पिता के पास कितने पैसे थे? और अभी पचास लाख या साठ लाख हो गये। हरिभाई! केशूभाई के समय कहाँ धूल भी उसके कारण हुआ है? मुर्दा हैं सब, मुर्दा। सत्य बात है?

भगवान आत्मा सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने पवित्र आत्मा अनन्त शुद्धभाव से भरपूर भगवान आत्मा देखा है। ऐसे शुद्धभाव की अन्तर श्रद्धा-ज्ञान, वह जीव का जीवन है। ऐसे जीव के जीवन बिना लक्ष्मी से (अपने को) बड़ा मानकर जीवे, वे तो सब मर गये मुर्दे हैं। वे तो मुर्दे परन्तु पंच महाव्रत, दया, दान, व्रत, भक्ति, आजीवन शरीर का ब्रह्मचर्य.... समझ में आया? ऐसे भाववाले भी शुद्धभाव की श्रद्धा ज्ञानरहित वे सब मुर्दे हैं। आहा...हा...! समझ में आया? हैं?

मुमुक्षु – कड़क दवा है।

उत्तर – कड़वी दवा है, कहते हैं। कठोर रोग हो तो इंजैक्शन ऐसा बड़ा, लम्बा देते हैं। देखा है? गले न उतरे तो मोटा ऐसा चढ़ाते हैं? क्या कहलाता है तुम्हारे यहाँ? ग्लूकोज की ऐसी बोतल चढ़ाते हैं। इसी प्रकार भगवान यह बोतल चढ़ाते हैं। इंजैक्शन लगाते हैं, मूढ़! मर गया है तू?

भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, शुद्ध चैतन्यमूर्ति अनन्त गुण की खान ऐसे आत्मा की तुझे अन्तर्मुख होकर सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान नहीं और तुझे पुण्य का दया, दान, व्रत का परिणाम से हमारा जीवन है और हम कुछ करते हैं..... मर गया मुर्दा है। तुझे जीव कौन कहे? आहा...हा...! अद्भुत बात भाई!

मुमुक्षु – मुर्दे को जीवित करे ऐसी यह दवा है।

उत्तर – मुर्दा मरकर दूसरे भव में होवे तब जीवित होता है। इस भव में होता है? इस शुभभाव मुर्दे में से जीव नहीं होता – ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? अद्भुत बात!

भाई! इसमें तो यह सिद्ध किया है। समझ में आया? कि एक आत्मा का शुद्ध स्वभाव.... वह दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा के परिणाम यह शुभभाव है – इस रहित आत्मा की अन्तर निश्चयश्रद्धा, ज्ञान, आत्मा की शान्ति, यह एक ही धर्म और यही मोक्ष का कारण है। यह न हो और अकेले व्रतादि, बाल ब्रह्मचर्य आदि ऐसे भाव पाले तो कहते हैं कि अमाननीय है, अपूजनीय है, मुर्दा है, सन्तों से उसे निकाल देने योग्य है। मुर्दा घर में नहीं रखा जाता, निकाल दे। समझ में आया? इसमें समझ में आया?

यह वीतराग परमेश्वर की बात है, यह कहीं किसी के घर की बात नहीं है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक जाने, उनकी वाणी में आया – परमात्मा की वाणी में (आया)। कहो, समझ में आया? अनन्त तीर्थंकर हुए, वर्तमान महा-विदेह में सीमन्धर भगवान तीर्थंकर विराजमान हैं। उनकी वाणी में यह आता है, वह आया है। अरे! चैतन्य की जाति को तूने झिंझोड़ कर जगाया नहीं और अकेले विकल्प की – दया, दान, व्रत के परिणाम को तूने रखा, मुर्दा है, कहते हैं। आहा...हा...! कहो, प्रवीणभाई! क्या कहे? डण्डा मारते होंगे कोई? समझे?

तीन लोक में सार होवे तो यह है; वह (राग की मन्दता आदि) सार नहीं है। ओ...हो...! इसमें तो कितने ही न्याय दिये हैं। तीन लोक में पूज्य है न? भाई! इसकी अपेक्षा से निकाला, ३३वीं गाथा.... तीन लोक में सार, आत्मा शुद्ध अखण्डानन्द प्रभु की दृष्टि, अन्दर अनुभव ज्ञान और उसमें रमणता – चारित्र, यह तीन लोक में सार और पूज्य है। इसके बिना – इस भानरहित अकेले व्रतादि, अकेले तपादि क्रियाकाण्ड का शुभभाव वह सब जैन शासन को मान्य नहीं है। वह अपूज्यनीय मुर्दा है, उसे निकाल देने योग्य है, वह जीव में मिलाने योग्य नहीं है परन्तु यह राग-मुर्दा चैतन्य में मिल ही नहीं सकता। आहा...हा...! समझ में आया? शशीभाई! बात अद्भुत, कठिन है। कहते हैं?

यह समझे, क्यों नहीं समझ सकता ? समझ सकता है, इसकी अपने घर की चीज है, घर में है, वहाँ घर में सहज साधन द्वारा प्राप्त होते हैं। उसे किसी दूसरे की सहायता की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तो विकल्प हो, राग – उसकी भी इसे आवश्यकता नहीं है। इतना तो स्वाधीन और स्वतन्त्र है। यह कहे कि मुझे समझ में नहीं आता। यह सब उल्टा अनादि का। समझ में आया ? वह सार है न ? उसमें दृष्टान्त दिया है। अब, ३४ वीं गाथा !

☆ ★ ☆

आपसे आपको ध्याओ

अप्पा अप्पइँ जो मुणइ, जो परभाउ चएइ।
सो पावइ सिवपुरि-गमणु, जिणवरु एम भणेइ॥३४॥

आत्मभाव से आत्म को, जाने तज परभाव।
जिनवर भाषे जीव वह, अविचल शिवपुर जाव॥ ३४॥

अन्वयार्थ – (जो परभाव चएइ) जो परभाव को छोड़ देता है **(जो अप्पइ अप्पा मुणइ)** व जो अपने से ही अपने आत्मा का अनुभव करता है **(सो सिवपुरिगमणु पावइ)** वही मोक्षनगर में पहुँच जाता है **(जिणवर एउ भणेइ)** – ऐसा श्री जिनेन्द्र ने कहा है।

☆ ★ ☆

३४ वीं गाथा। **आपसे आपको ध्याओ।** देखो, यह व्यवहार व्रतादि के विकल्प, दया, दान, यह सब शुभराग है। इससे आत्मा का जीवन नहीं जिया जाता। तब अपने द्वारा अपना ध्यान करो। भगवान चैतन्य, पुण्य-पाप के विकल्परहित ऐसा अन्दर आत्मा आनन्दमूर्ति, आत्मा का आत्मा से ध्यान करो; राग-वाग को लक्ष्य में से छोड़ दो। समझ में आया ? इस मुर्दे को छोड़ दो, कहते हैं। यह मुर्दा जीवित नहीं होगा। यह जीवता जीव होगा, वह जीवित होगा।

अप्पा अप्पइँ जो मुणइ, जो परभाउ चएइ।
सो पावइ सिवपुरि-गमणु, जिणवरु एम भणेइ॥३४॥

देखो! '**जिणवर एउ भणेइ**' जिनवर वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव जिनवर ऐसा **भणेइ** अर्थात् कहते हैं। '**जो अप्पइ अप्पा मुणइ**' आत्मा आत्मा को जाने। भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दभाव से भरपूर, उसे शुद्धभाव से आत्मा को जाने... समझ में आया? और '**परभाव चएइ**' जो व्यवहार कहा था – मुर्दा। स्वभाव का आश्रय लेकर आत्मा निर्विकल्प शुद्ध है, परमानन्द है, उसका आश्रय लेकर शुद्धभाव से आत्मा को जाने, तब अन्तर्मुख होने पर ये विकल्प जो व्यवहार के हैं, वे छोड़े। वे मुर्दे हैं, आत्मा को अन्तर साधन में बिल्कुल सहायक नहीं है। समझ में आया? यह तो योगसार है न! योगसार है। मोक्षमार्ग का सार। योग अर्थात् आत्मा में जुड़ान। आत्मा में जुड़ान, उसका सार। समझ में आया?

'**अप्पा अप्पइ जो मुणइ**' **जो परभाव को छोड़ देता है....** शुभ-अशुभभाव, विकार, उन्हें दृष्टि में से छोड़ देता है और '**जो अप्पइ अप्पा मुणइ**' **और जो अपने में ही अपने आत्मा का अनुभव करता है....** आहा...हा...! शुभभाव, पहले धर्म होता है और फिर यह धर्म होता है – ऐसा नहीं कहा है। यह शुभभाव छोड़कर आत्मा का अनुभव करे तो धर्म होता है। उसे रखकर होता है? आहा...हा...! अद्भुत बात, जगत् को कठिन (लगती है)। वीतराग परमेश्वर की वीतराग बात.... राग के लोभियों को वीतराग की बात कठिन पड़ती है। आहा...हा...!

मुमुक्षु – इसे रुचती नहीं, शुभभाव छाया लगती है।

उत्तर – छाया ही है यह, धूप कहाँ थी? पुण्य और पाप दोनों धूप है। भगवान आत्मा शान्त, शीतल रस से भरा हुआ, यह पुण्य-पाप के दोनों भाव पाप है, अग्नि है, जहर है, आहा...हा...! कहो, समझ में आया? समाधिशतक का दृष्टान्त (दिया) है। धूप में खड़ा रहे, उसकी अपेक्षा छाया में खड़ा रह न! कहो समझ में आया? खड़ा है परन्तु जो शुद्धभाव में रहा है, वही पन्थ है। यह वहाँ छाया में खड़ा और पुण्य में खड़ा, इसलिए पन्थ है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया?

ओ...हो...हो...! अनन्त काल का जन्म-मरण का भाव, उसे मिटाने का भाव तो कोई अपूर्व ही होगा न! अहो! अनादि काल के.... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि...

कहीं नजर डाली नजर पहुँचे नहीं; नजर को अन्त आवे नहीं इतना – अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... भटककर थोथा उड़ गया इसका, भव कर करके। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त को अनन्त से गुणा करो तो भी अनन्त, इतने भव किये, भाई! आत्मा के भान बिना! एक सम्यग्दर्शन बिना ऐसे भव किये। उसमें व्रत, नियम, तप पालन करके नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार गया, वह तो शुभभाव था। समझ में आया?

आचार्य फरमाते हैं '**अप्पा अप्पइ जो मुणइ जो परभाव चएइ।**' देखा? व्यवहार को छोड़कर.... व्यवहार को छोड़कर आत्मा का अनुभव करे। '**सो पावइ सिवपुरिगमणु**' लो! **वही मोक्षनगर में पहुँच जाता है।** वह मोक्षनगरी.... परमात्मा सिद्ध भगवान, णमो सिद्धाणं। उस सिद्धपद को (प्राप्त करता है)। इस आत्मा के शुद्धभाव का अनुभव करे, परभाव – पुण्य-पाप के भाव को अन्तर से छोड़े, स्वरूप में स्थिर हो, वह मुक्तिपुरी को पाता है। ऐसा **श्री जिनेन्द्र ने यह कहा है।** देखो, आचार्य को डालना पड़ा, भाई! यह हम नहीं कहते, भगवान ऐसा कहते हैं।

तीन लोक के नाथ, इन्द्रों के पूज्य पुरुष समवसरण में – धर्मसभा में भगवान ऐसा दिव्यध्वनि में कहते थे। आहा...हा...! भाई, तू धीरजवान हो, धीरजवान हो। तेरे स्वरूप में अन्दर अनन्त आनन्द पड़ा है। तेरे स्वभाव में अनन्त आनन्द का सागर डोलता है, आहा...हा...! ऐसे स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान से जीव को स्थिरता (होने पर) अल्प काल में उसे मुक्तिनगरी मिलेगी। यह व्यवहार छोड़ तो मिलेगी – ऐसा कहते हैं। इस व्यवहार के द्वारा, इसकी मदद से आगे मुक्ति में जाया जा सकेगा – ऐसा है नहीं। ऐसा जिनवर, जिनवर, जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा, परमेश्वर, तीर्थंकरदेव – ऐसा **भणेइ**, ऐसा **भणेइ....** भणेइ अर्थात् ऐसा प्ररूपित करते हैं – ऐसा कहते हैं। लो! आचार्य ने ऐसा दृष्टान्त दिया।

योगीन्द्रदेव भी सिद्ध भगवान को ऐसा कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्यदेव की तरह.... भगवान ऐसा कहते हैं। तीन लोक के नाथ इन्द्रों के समक्ष, गणधरों की उपस्थिति में, भगवान की वाणी में ऐसा आया था कि यह आत्मा परमानन्द की मूर्ति है, इसे पुण्य-पाप के भाव हों, उनमें से दृष्टि छोड़। छोड़ दे उन्हें; छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो तो अल्प काल

में मुक्ति होगी, दूसरा कोई उपाय नहीं है। यह पुण्यभाव तुझे मदद करे – ऐसा नहीं है। अटकानेवाला बीच में आता है – ऐसा कहते हैं, इसलिए छोड़। आहा...हा...! ऐसी बातें जगत को जमना कठिन है, भाई! समझ में आया?

आत्मा को-आत्मा द्वारा.... ऐसा है न? '**अप्पा अप्पइ**' है न? आत्मा, आत्मा द्वारा.... अर्थात् क्या? भगवान आत्मा अनन्त आनन्द और शुद्ध चैतन्य की मूर्ति, उसे आत्मा, आत्मा द्वारा.... आत्मा द्वारा अर्थात् अन्य व्यवहार द्वारा नहीं, दया-दान-व्रत, कषाय के मन्द (परिणाम) वह आत्मा नहीं है; वह तो अनात्मा, आस्रवतत्त्व है। आत्मा आत्मा के द्वारा... भगवान आत्मा अपने निर्विकल्प-रागरहित श्रद्धा-ज्ञान द्वारा परभाव छोड़कर.... यह दया, दान, व्रत के परिणाम बन्ध के कारण हैं, उन्हें छोड़कर – ऐसा जिनवर कहते हैं, तो वह शिवपुर को पाता है, वरना मोक्ष में नहीं जाता; चार गति में भटकेगा। पहले कहा था वह। (गाथा) ३३ में कहा था न? कि पुण्य से स्वर्ग में, पाप से नरक में, और दोनों को छोड़े तो शिववास में (जाता है)। उस शिववास की यह विशेष व्याख्या की है। कहो, समझ में आया?

'लाख बात की बात एक निश्चय उर आणो;' छहढाला में आता है या नहीं? भगवान आत्मा.... उसका निधान चैतन्य रत्नाकर प्रभु आत्मा है, उसमें अनन्त रत्न, आनन्द और शान्ति के भरे हैं। भगवान जाने, उसकी धूल में भरा इसे दिखे और यह दिखे नहीं। कहो, हरिभाई! पाँच-दस लाख रुपये, पचास लाख हो वहाँ तो आहा...हा...! मैं चौड़ा गली सँकरी।

मुमुक्षु – कभी देखा न हो तो फिर ऐसा ही होता है न?

उत्तर – धूल में भी देखा नहीं... पूरी दुनिया दिखे इसमें तेरे बाप को क्या आया? समझ में आया? ऐ... मोहनभाई! अन्य पैसेवाले सब हैं न? कहते हैं न – वाला है न सब? कितनेवाला? पैसेवाला, लड़केवाला, स्त्रीवाला, इज्जतवाला, मकानवाला, अमुकवाला कितने 'वाला' लगे हैं इसे? एक वाला (विशेष प्रकार का रोग) होवे तो खा जाये, वह आता है न पैर में? वाला, हैं? कितने वाला?

यहाँ तो कहते हैं भगवान रागरहित, देहरहित, मनरहित, वाणीरहित; वाला नहीं यह

तो रहित है। समझ में आया? ऐसे आत्मा की – स्वभाव की आत्मा द्वारा श्रद्धा और स्वभाव की स्थिरता कर। अल्प काल में मुक्ति हो, वह पन्थ मोक्ष का है। बीच में व्यवहार आवे उसे छोड़ता जा, छोड़ता जा; आदर नहीं करता जा, उसकी मदद लेकर आगे बढ़े, ऐसा नहीं – ऐसा कहते हैं, देखा? आहा...हा...! फिर बहुत बात (ली है)। लो, यह ३४ (गाथा पूरी) हुई।

अब, व्यवहार में नौ पदार्थों का ज्ञान होता है – ऐसा कहते हैं। इस एक की बात की न आत्मा की.... आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है, उसका भान, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, वह मोक्ष का मार्ग है। अब ऐसे स्थान में इसे भगवान ने छह द्रव्य कहे, छह द्रव्य भगवान ने कहे.... अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश (एक-एक) इनके अन्तर भेद नौ। यह नौ तत्त्व व्यवहाररूप है, उनका इसे ज्ञान करना चाहिए; क्योंकि वीतरागमार्ग के अतिरिक्त ऐसे नौ तत्त्व अन्य में नहीं होते हैं। समझ में आया? देखो, इस गाथा में ऐसा कहते हैं, हाँ! **व्यवहार में नौ पदार्थों का ज्ञान आवश्यक है** अर्थात् होता है। प्रयत्न से, कहा है न? प्रयत्न से जानना। उसका कारण है कि आत्मा के ज्ञान की एक समय की पर्याय उन छह द्रव्य को जानने की सामर्थ्य रखती है। छह द्रव्य जो भगवान ने कहे – अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु... परमाणु, यह रजकण, पॉइन्ट, यह धूल... इससे असंख्य कालाणु इन सबको (जाने ऐसी) आत्मा के गुण की एक पर्याय सामर्थ्य रखती है। परसन्मुखवाली एक पर्याय सामर्थ्य रखती है। यह इसे पर्याय का ज्ञान यथार्थ होने को इसे नवतत्त्व का ज्ञान यथार्थ होना चाहिए, उनमें से छाँटकर अकेले आत्मा का ज्ञान करे, उसका नाम मोक्षमार्ग है। इसके लिए यह नवतत्त्व की व्याख्या करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)